आदिनाथ हिन्दी-जैन-साहित्य-माला-पुष्प नं० ६५

कार्तिक पूर्णिमा माहात्म्य

लेखक :—
नरेन्द्रसिंह जैन

प्रकाशक :—
पण्डित काशीनाथ जैन
अध्यक्ष—आदिनाथ-हिन्दी-जैन-साहित्य-माला
पो० धम्बोरा (उदयपुर-राजस्थान)
७, खेलात घोष लेन, कलकत्ता-६

सन् १९६५] [मूल्य ६२ पैसे

साहित्य मालाके संरक्षक और सभासदों की नामावली

संरक्षक—माननीय बाबू श्री श्रीपतसिंहजी दूगड़

आजीवन सभासद

श्रीयुत लक्ष्मीचन्दजी पन्नालालजी करणावट — कलकत्ता।
" " छन्नालालजी सोहनलालजी करणावट, — कलकत्ता।
" " पन्नालालजी विजयसिंहजी करणावट, — कलकत्ता।
" " शाह देवराजजी बी० पारख, बी० एम० बी० टी० — बम्बई।
" " धनराजजी उमरावसिंहजी बैद, — कलकत्ता।
" " जयन्ती लालजी माधोलालजी मेहता, — कलकत्ता।
" " महताबचन्दजी पूरणचन्दजी शामसुखा, — कलकत्ता।
" " हिम्मतमलजी विजयसिंहजी सुराणा, — कलकत्ता।
" " भँवरलालजी कमलसिंहजी रामपुरिया, — कलकत्ता।
" " विनोदचन्दजी पुरुषोत्तम दासजी झवेरी, — अहमदाबाद।
" " प्रसन्नचन्दजी परिचन्दजी बोथरा, — कलकत्ता।
" " नथमलजी सम्पतलालजी रामपुरिया, — कलकत्ता।
" " बीरेन्द्रसिंहजी अशोककुमार सिंहजी सिंघी — कलकत्ता।
" " प्रतापचन्दजी कल्याणचन्दजी चोरड़िया, — कलकत्ता।
" " लक्ष्मीचन्दजी फतेहचन्दजी कोचर, — कलकत्ता।
" " रायसाहब मन्नालालजी दयाचन्दजी पारख, — कलकत्ता।
" " भुरामलजी पुनमचन्दजी गुजरानी, — सिरसा।
" " रतनलालजी ताराचन्दजी बोथरा, — बीकानेर।
" " रावतमलजी भैरूदानजी सुराणा, — बीकानेर।
" " चान्दमलजी जवानमलजी सुपोत — शोलापुर
" " जोमतराजजी जुवानमलजी पोरवाल — गुढाबालोतरा।
" " लालचन्दजी हस्तीमलजी चौधरी, — गढ़सिवाणा।
" " नेमीचन्दजी खेमचन्दजी डाकलिया, — राजनांदगाँव।

जीयागंज (मुर्शिदाबाद निवासी)

श्रीयुत् बाबू श्रीपत सिंह जी दूगड़ का

संक्षिप्त परिचय

आपका जन्म सं० १९३८ में जीयागंज में हुआ था। आपके पिताजी का नाम छत्रपतसिंहजी और माताजीका नाम फूलकुमारी था। आपकी शिक्षा जीयागंजमें हुई। आपका विवाह संस्कार ११ वर्षकी आयुमें बीकानेर हुआ था। आपको ३५ वर्षकी आयुमें आपके पिताजीका देहावसान हो गया। इसके बाद जमींदारीका कारोबार आप संचालन करने लगे।

सन् १९४९ में आपने जीयागंजमें कॉलेज स्थापित करवाया, जिसमें आपने, अपने निजी निवासस्थानका विशाल भवन था, जिसकी लागत लगभग ७५००००) रुपयेकी है, उसे कॉलेजके लिये दिया है। एवं २५००००) रुपये नकद तथा १५००००) की जमींदारी भी कॉलेजके संचालनके लिए दी है एवं हॉस्टल-छात्रावास निर्माणके लिए भी ५०२०००) रुपये 'गवर्नमेंट ऑफ वेस्ट बंगाल' शिक्षा विभागके मन्त्री महोदयको प्रदान किये हैं। कॉलेजका नाम "श्रीपतसिंह कॉलेज" रखा गया है। इसके सिवा प्रसूती गृहके लिए सन् १९५७ में जीयागंजके 'London Misson Society's Hospital' में जैन महिलाओंके लिए रानी धन्ना कुमारी श्रीपतसिंह बाई के नामसे लगभग ६५,०००) रु० प्रदानकर एक पृथक् प्रसूतीगृह बनवा दिया है। आपने कलकत्तेके जैन भवन में 'लक्ष्मीपतसिंह श्रीपतसिंह दूगड़" हॉल बनवानेमें तथा अपनी धर्म-पत्नी रानी धन्नाकुमारीके नामपर उपरोक्त हॉलके ऊपर एक नया पुस्तकालय भवन निर्माणके लिए १५०,०००)

दिए हैं। इसके अतिरिक्त अन्यान्य छोटे-मोटे जैन-मन्दिर एवं जैन संस्थाओंमें लगभग ४५००००) रु० दान किये हैं।

जीयागंजमें आपके संस्था-श्रीविमलनाथ भगवानका मन्दिर, पौषधशाला, आयंबिल, अक्षयनिधि खाता तथा धर्मशाला हैं। इनके निरन्तर निर्वाहके लिए आपने १०००००) बैंक में जमा करवा दिये हैं। इन संस्थाओंके संचालनका सारा कार्यभार 'कलकत्ता तुलापट्टी जैन बड़े मन्दिर' के संचालकोंके जिम्मे रखा गया है। तथा विमलनाथस्वामीके जिनालय के लिए ४५०००) रु० तुलापट्टीके बड़े मन्दिर में जमा कराए हैं।

अभी हाल ही में आपने १०००००) रु० श्री नरेन्द्रसिंहजी सिंघी तथा श्री परिचन्दजी बोथराकी निगरानीमें दिए हैं। जिसके ब्याज से जीयागंज के मन्दिरों का जीर्णोद्धारका कार्य चलता रहेगा।

इस प्रकार आपने धार्मिक कार्योंमें बड़े उत्साह से दान दिया है और देते रहते हैं। इस समय आपकी उम्र ८४ वर्षकी है। अस्तु! शासनदेव आपको दीर्घजीवी करें। आपके चित्तमें सदैव धर्मकी सद्भावना उत्तरोत्तर बढ़ती रहे। यही हमारी आन्तरिक अभिलाषा है।

कार्तिक पूर्णिमा
९-११-१९६५
७, खेलात घोष लेन
कलकत्ता—६

निवेदक :-
नरेन्द्र सिंह जैन

कार्तिक पूर्णिमा माहात्म्य

महामुनिपति द्राविड़ और वारिखिल्य दशकोटि मुनियों के साथ सिद्धाचलजी पर इस पवित्र कार्तिक पूर्णिमा के दिन सिद्धपदको वरण करनेके कारण केवल जैन-धर्मावलम्बी समाजमें ही नहीं, वरन् जैनेतर समाज में भी इस कार्तिकी पूर्णिमाकी महिमा प्रसिद्ध हो चुकी है। इसी लिए सैकड़ों ही नहीं वरन् हजारों जैन भाई सिद्धाचल की यात्रा के लिए दूर एवं निकटवर्ती स्थानों से इस पवित्र दिन आ पहुँचते हैं।

श्री धनेश्वरसूरि विरचित शत्रुञ्जय - माहात्म्य में कार्तिक पूर्णिमाकी महिमा सिद्धगिरिकी यात्राके निमित्त अद्भुत रूपमें वर्णित है। तदनुसार यहाँ संक्षिप्त-वर्णन पाठकवर्गके नयन-पथमें प्रस्तुत करनेसे सिद्धगिरि की यात्रार्थ पधारे हुए जैनबन्धुगण, कार्तिक पूर्णिमाकी अद्भुत महिमासे परिचित होनेके साथ-साथ महामुनीश्वर द्राविड़ और वारिखिल्यके जीवनकी रूपरेखाका अवलोकन करके सिद्धाचल तीर्थकी पवित्र भूमिकाके

लिए अनुमोदन कर सकें और यावज्जीव श्री सिद्धगिरि-राजकी यात्राका अपूर्व लाभ इस कार्तिकी पूर्णिमाके दिन ले सकें, इस शुभाशाको लेकर ही यह वर्णन लिखा जा रहा है।

द्राविड़ और वारिखिल्यके जीवन की रूपरेखा

श्री युगादिनाथ ऋषभदेव प्रभुके एक सौ पुत्रोंमेंसे द्रविड़ नामक एकपुत्र था, जिसके नामसे प्रसिद्धि पाया हुआ द्राविड़ देश वर्तमान समयमें भी विद्यमान है।

द्रविड़ राजाके दो पुत्र थे, जिनके नाम द्राविड़ और वारिखिल्य रखे गये थे। दोनों पुत्र परस्पर स्नेही और लक्ष्मीके धामरूप थे। वे धीरे-धीरे शुक्लपक्षके सुधाकर की कलाके समान वृद्धिगत होते हुए युवावस्थाको प्राप्त हुए। तब पिताने राज्य-कार्य भार ग्रहण करनेके लिए योग्य समझकर द्राविड़ और वारिखिल्यको शासन-सूत्र सौंपनेका विचार किया, किन्तु यह सोच करकि "एक राज्यके लिए इन दोनों भाइयोंमें पीछेसे विषम वैरभाव उत्पन्न नहीं हो जाय;" अतः मिथिलाका राज्य द्राविड़ को सौंपा और वारिखिल्यको एक लाख उत्तम ग्राम प्रदान किये. किन्तु भाग्य-महिमा अद्भुत है। वारि-

खिल्यकी राज्यलक्ष्मी और कीर्ति दिनों-दिन वृद्धि पाने लगी। यह देखकर ज्येष्ठ बन्धु द्राविड़को अपने अनुज वारिखिल्यके प्रति ईर्ष्या होने लगी।

वारिखिल्यका तिरस्कार और दारुणयुद्ध

एक दिन बड़े भाई द्राविड़ने विरोध या शत्रुताके बीजरूप लघु भ्राता वारिखिल्यको क्रोधके आवेशमें यह कठोर वचन कह दिया कि 'तुम्हे मेरी राजधानी छोड़कर अब अपने देशमें रहना चाहिए।' भला, ऐसा कठोर वचन वह कैसे सहन कर सकता था ? उसने सोचा— मेरा यह तिरस्कार ! और ऐसे मर्मभेदी कठोर वचन ! जब ज्येष्ठ बन्धुकी ओरसे ही प्रत्यक्ष अनुभव करना पड़ता है; तो अब मेरे लिए इस भूमि पर क्षणभर भी ठहरना किसी भी एक क्षत्रियकुमारके नाते कदापि युक्त नहीं हो सकता ? अतः क्रोधसे धम-धमाता हुआ वह तत्काल अपनी राज्यभूमिकी ओर चल दिया।

स्वराज्यमें पहुँच कर उसने करदाता राजाओंको एकत्रित कर अपने ज्येष्ठ बन्धु द्राविड़के साथ युद्ध करनेके विचार प्रकट किया। अतः राज-दरबारमें उपस्थित प्रत्येक पराक्रमी राजाने मस्तक नवाँकर कहा, "महाराज

वारिखिल्यकी सेवा बजालाने और वरमाला पहनानेके लिए हम सब सेवक सदैव तैयार हैं।" इसके बाद शीघ्रता से अपने एक लाख ग्रामोंमें से हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, सेना आदि युद्धोपयोगी साज-सामान एकत्रित कर उसने अभिमानके साथ बड़े भाई द्राविड़ पर चढ़ाई करनेकी तैयारी कर ली।

उधर गुप्तचरों-द्वारा महाराजा द्राविड़को यह समाचार तत्काल ही विदित हो गया और उन्होंने भी सत्वरतासे आकाशका परिस्फोटन करनेवाली रणभेरी बजवा कर गज, अश्व, रथ, पैदल सेना एकत्रित की और महापराक्रमी सेनापतियोंके सहित लघु भ्राता वारिखिल्य पर चढ़ाई कर दी।

अपने देशकी सीमा पर ज्येष्ठ बन्धु द्राविड़को चढ़कर आया जानकर वारिखिल्य भी अपनी तैयार सेनाको साथ ले सामना करनेको आ पहुँचा। युद्ध करनेके लिए अपने-अपने नियत स्थानसे दोनों सेनाओं के बीच पाँच योजनका अन्तर रखकर दोनों ओरके वीर योद्धाओंने युद्धकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए पड़ाव किया। उस समय प्रधान पुरुषोंने अपने-अपने राजासे पूछे बिना ही सन्धि करनेके लिए दूत भेज दिये, किन्तु साम, दाम और भेद वचनोंसे तनिक भी सन्तुष्ट न

होकर युद्ध करनेके ही निश्चयके साथ युद्ध घोषणाके लिए निश्चित दिनकी प्रतीक्षा करते हुए युद्धोत्सुक पराक्रमी योद्धा उतावले दिखाई देने लगे।

किन्तु लघु भ्राता वारिखिल्य नरेशने ज्येष्ठ बन्धु द्राविड़ राजाके कई सैनिकोंको विपुल द्रव्य देकर अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार यहाँ 'धनं सर्वं वशमानयति' की उक्ति चरितार्थ हो गई। दोनों सेनाओंमें दशकोटि पैदल, दस लाख रथ, दस लाख हाथी और पचास लाख घोड़ोंके सिवाय कितने ही छत्रधारी राजा भी सम्मिलित हुए थे।

दोनों सेनाकी समानता त्रैलोक्यको भयभीत करने जैसी थी यथा समय युद्धका दिवस प्राप्त होते ही राजवाद्योंका नाद होने लगा। भेरीकी भन्कारसे आकाश गूँजने लगा और समस्त संसार भयभीत हो उठा। रणवाद्य के कर्णस्फोटक उच्च नादसे युद्धाभिलाषी शूर-वीर योद्धाओंके हृदय विशेष उल्लसित होकर उछलने लगे। सत्कुलमें उत्पन्न हुए प्रचण्ड भुजाओंसे मण्डित सभी शस्त्रोंके अभ्यासी महाशूर वीर योद्धा उच्च स्वरसे हुँकार पूर्वक गर्जना करने लगे। अपने-अपने पूर्वजोंके महा पराक्रमकी बिरुदावली, वाद्योंके साथ भाट-चारणादिके मुखसे सुनकर महापराक्रमी वीर

योद्धाओंके रोम-रोम विकस्वर होने लगे। युद्ध आरंभ हुआ और अग्रसर शूर-वीर भयंकर धनुष्यकी टंकारके साथ बाणोंकी वृष्टि पुष्करावर्तके मेघोंकी मूसलधाराके समान एक दूसरेपर करने लगे। सम्पूर्ण आकाश बाण-मय हो गया। दावानलके समान हाथी से हाथी, अश्व से अश्व, पैदल से पैदल और रथारूढ से रथी योद्धागण न्याय-पुरस्सर युद्ध करने लगे। उन शूरवीर योद्धाओंकी परस्पर हुँकार गर्जनासे पृथ्वीतक काँपने लगी। महादारुण युद्ध हुआ। दोनों पक्षके वीर योद्धा रण भूमिमें सोने लगे। रुधिरका सागर इधरसे उधर उछलने लगा। लगातार सात मास पर्यन्त अत्यंत भयंकर संग्राम चलता रहा और दोनों पक्षके सब मिलाकर दस कोटि योद्धा रणचण्डी के भेंट चढ़ गये।

वर्षाऋतु आरंभ होते ही कालके समान कृष्णवर्ण मेघ गगन मण्डलमें घिर आये। उनकी भयंकर गर्जना के साथ-साथ बिजलीकी कड़कड़ाहट भी आतंकित करने लगी और थोड़ी ही देरमें मूसलधाराके रूपमें घनघोर वर्षा होने लगी। रणधीर एवं शूरवीर तथा युद्धसे पराङ्मुख न होने वाले साहसी योद्धा भी उस भीषण वर्षाके कारण संग्राम भूमि त्यागकर चले गये। उन जलवर्षासे त्रस्त वीरोंने अपनी रक्षाके लिए मस्तक

पर ढालें रखलीं और युद्धसे निवृत्त हो ऊँचे स्थानोंमें खड़ी की हुई झोंपड़ियोंमें जाकर आश्रय ग्रहण किये।

वर्षाऋतु बीतनेके पश्चात् शरद् ऋतु आरंभ होते ही आकाश एकदम निर्मल हो गया। उसीके साथ-साथ दोनों ही राजा भी अपनी-अपनी सेनाका विनाश हुआ देखकर हृदयकी कलुषित भावना त्यागते हुए निर्मल हो गए।

सुवल्गु तापसका आश्रम

द्राविड़ महाराजा स्वस्थ चित्त से विश्राम लेनेके लिए एक दिन सुन्दर स्थानमें बैठे थे कि उसी समय विमलबुद्धि नामके मंत्रीश्वरने आकर प्रणाम-पूर्वक निवेदन किया कि—"हे स्वामिन्! इस श्रीविलास नामक वनके निकट कितने ही तापस पापकी शांतिके लिए तीव्र तपस्या कर रहे हैं। वे जीर्ण वल्कल वस्त्र धारण करते और कंद-मूल, फल-फूल आदि खाकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। यदि महाराजाकी आज्ञा हो तो हमलोग उनके दर्शन-वन्दन करनेके लिए चलें।"

मंत्रीश्वरके वचनका सार्थक करनेके लिए द्राविड़ महाराजा अपनी सम्पूर्ण सेनाको साथ लेकर तापसोंके आश्रममें पहुँचे। वहाँ दृष्टिपात करने पर उनमें से एक

मुख्य तापस दिखाई दिये । वे वल्कल वस्त्र धारण किये पर्यंकासन से बैठकर माला से जप करते हुए ध्यानमें लीन प्रतीत हो रहे थे । उनके समग्र शरीर पर गंगाकी मृत्तिकाका विलेपन किया हुआ था । उन्होंने जपमण्डल से मण्डित होकर नेत्ररूपी भ्रमरको श्री युगादिदेव आदिनाथ प्रभुके चरण-कमलोंमें तल्लीन कर दिया था । भक्तिमान् तपस्वी एवं अन्य धर्मार्थी लोग उनकी उपासना कर रहे थे । उस ध्यानस्थ शांत मूर्तिको देख कर द्राविड़ महाराजाके मनमें स्वाभाविक भक्तिकी तरंग उठ खड़ी हुई, और अन्य तापसोंके मुखसे उन महात्माका नाम जानकर उस नामके साथ भक्ति-भावसे द्राविड़ महाराजाने उनको नमस्कार किया ।

प्रिय पाठकों ! आपको उन महात्माका नाम जाननेकी तीव्र उत्कंठा होना स्वाभाविक है, किन्तु आपको तनिक धैर्य रखना होगा । ये महात्मा वही हैं कि जिनके उपदेशसे द्राविड़ और वारिखिल्य महाराजा राजपाट त्यागकर आत्मा का कल्याण करने वाले हैं । वे महात्मा इस श्री विलासवनमें सुवल्गु तापसके नाम से प्रसिद्ध थे ।

सुवल्गु तापस का उपदेश

महाराजा द्राविड़के प्रसन्न चित्तसे किये हुए प्रणाम की महत्ता के कारण ध्यानसे मुक्त हो सुवल्गु तापसने दोनों हाथ उठाकर विकस्वर मुखसे आशीर्वाद दिया :— हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो !"

आशीर्वाद अंगीकार कर नम्र द्राविड़ महाराजाने उपदेश सुनने की इच्छा मनमें रखते हुए परिवार सहित सम्मुख आसन लिया। जिन्होंने युगादि प्रभुकी पवित्र वाणी सुनी है, ऐसे वे सुवल्गु तापस तब मधुर-वाणीमें उपदेश देने लगे।

'हे राजन् ! यह संसार समुद्रकी तरंगके समान चपल है। इसमें विषयरूप भ्रमरचक्रमें फँसकर पामर प्राणी डूब जाते हैं। हे राजन् ! दुःखके समूहका संचित करने वाले विषय सन्मार्ग पर चलते हुए प्राणियोंको भी पिशाचके समान धोखा देते-छलते हैं। कषायरूप शत्रु पूर्व-संचित पुण्यरूप पुष्कल धनको देखते-देखते ही तत्काल हरण कर लेते हैं। उनमें भी क्रोधरूपी महा-योद्धा तो किसीसे भी परास्त नहीं होता। जब शरीर-रूपी घरमें क्रोधरूपी अग्नि सुलग उठती है तो वह जीवके पुण्यरूप सर्वस्वको जलाकर भस्म करदेती है।

इसीलिए समस्त कषायोंमें उसे मुख्य कहा है। यदि प्रमादसे भी जीवकी हिंसा होती है तो उसके कारण कु-योनिमें जन्म लेना पड़ता है इसी लिए क्रोधसे किसी भी प्राणीकी हिंसा करना नरकका कारण हो जाता है। जो लोग राज्यादिके सुखके लिए अश्व, गज या मनुष्योंका हनन या युद्ध करते हैं वे उजेला करनेकी बुद्धिसे अपना ही घर जला देते हैं। हे राजन्! परिणाममें नरक प्राप्त करने वाले राज्यके लिए तुम बन्धुके साथ बैठ करके करोड़ों मनुष्यों की हिंसा किस लिए करते हो? यह शरीर अनित्य है। लक्ष्मी जलके बुदबुदेके समान है और प्राण तृण घास की अग्निके समान हैं। अतः इनके लिए अब तुम पाप मत करो। यदि किसी कार्यके लिए विरोध भी करना पड़े तो वह शत्रुके साथ करना चाहिए, किन्तु अपने बन्धुके साथ विरोध करना तो अपना ही एक नेत्र फोड़ लेने जैसा है। यदि निर्गुणी, दरिद्री, लोभी और दुःखदायी बन्धु भी हो, तो भी वह श्रेष्ठ है, क्योंकि वह अपना ही दूसरा जीव या प्राणरूप है। यदि अपना बन्धु प्रचण्ड या तीव्र स्वभाव वाला भी हो; तो भी उसके साथ संगम-मेल करना उत्तम होता है। देखो, जैसे कमल अपने तीव्र मित्र सूर्यके दर्शनसे प्रसन्न होता है; किन्तु

चन्द्रमा अमृतमय होने पर भी उससे वह (कमल) प्रसन्न नहीं होता। जो क्रूर-पुरुष राज्यादिके लिए क्रोधसे अपने बन्धुओं की हत्या करते हैं युद्धमें उन्हें मारते हैं; वे पुरुष अत्यंत लोलुपताके वशीभूत होकर अपने ही शरीरके अवयवोंको काटकर स्वयं ही भक्षण करते हैं। हे राजन्! लोभरूपी पिशाचके आधीन होकर तुमने अपनी ही दूसरी भुजारूप बन्धुके साथ युद्ध करनेका यह कार्य कैसे आरम्भ किया है? हे राजन्! इस भयंकर युद्ध कर्मसे अब विराम लो। सब सैनिक सुखसे रहें और दिग्गज धरणीधर शेषनागके साथ विश्रान्ति पावें। जब तुम धर्म और श्री युगादि प्रभुकी आराधना करते हो तो उनके द्वारा दूर की हुई हिंसाको फिर किस लिये संचित करना चाहते हो?"

सुवल्गु तापसके मुखसे इस प्रकार उपदेश सुनने से जिनके अन्तःकरण की स्थिति धर्मसे भेद पाकर समान-भावको प्राप्त हुई है, ऐसे वे द्राविड़ राजा दयार्द्र हृदयसे बोले—: "हे मुने! श्री भरत, आदियशा और बाहुबली आदि श्री आदीश्वरके ही पुत्र थे; किन्तु फिर भी उन्होंने सहज कारणको लेकर परस्पर युद्ध किया था, और उन्होंने हाथी, घोड़े, मनुष्य आदिका युद्धमें विनाश किया था और [illegible] को भी दूषित

नहीं समझे गये। इसका कारण क्या है ? क्योंकि इनमें तो कोई ऐसा हेतु भी घटित नहीं होता था ; जब कि मेरा भाई वारिखिल्य तो कोप कलुषित है । असत्यमार्गका प्रवर्तन करनेवाला है, और अपनी इच्छासे ही स्वजनकी अवगणना करके युद्ध करनेके लिये अग्रसर हुआ है। फिर भी यह युद्धसे विरत होकर मेरी आज्ञाके द्वारा सुख से अपना राज्य भोगे । मैं अपने देशमें वापस जाने को तैयार हूं।" इस प्रकार द्राविड़ राजाके वचन सुनकर सुवल्गु तापस अत्यन्त आदरके साथ धर्मके सर्वस्वरूप उत्तम वचन बोले :—"हे राजन् ! तुमने जो भरत आदि के उदाहरण दिये हैं, वे यहां घटित नहीं होते । इसका कारण सुनो । भरत चक्रवर्ती ने मुनिदानसे चक्रवर्ती की लक्ष्मी संपादन की थी और बाहुबलीने मुनियोंकी वैया वच्चकरके बाहुबल (भुजाबल) उपार्जन किया था। चक्र जब शस्त्रागारमें प्रविष्ट नहीं हुआ, तब भरत चक्रवर्तीने उससे झुकने (नमने) को कहलवाया, किंतु, महाबलिष्ठ बाहुबलीने यह प्रत्युत्तर दिया कि —"पिताके सिवाय अन्य किसीके भी सामने मैं नहीं नमूंगा।" अतः दोनों बन्धुओंके बीच अहंकारके उफानके कारण युद्धका प्रसंग उपस्थित हुआ। उस समय देवताओंके कथनसे वे बुद्धिमान् वीर जगत्के संहारके लिए कारणी-

भूत अन्यके द्वारा होनेवाले अन्य प्रकारके युद्ध त्यागकर केवल बाहुयुद्ध, दृष्टियुद्ध आदिके द्वारा परस्पर लड़े थे। हे राजन्! बाहुबली और भरतचक्रवर्तीने जो उत्कर्षका कार्य किया, उसको स्मरण करो। वे लोग महान पराक्रमी, गुणवान् और उदार चरित्रवाले थे। युगादि प्रभुके पुत्र होनेसे क्षणभरमें ही पिताका अनुकरणकर ज्ञान और मोक्षको प्राप्त कर सके। इधर तुम भी श्री ऋषभस्वामीके पौत्र हो सो जब तुम्हारे पितामह और काका (चाचा) के समान कार्य (पुरुषार्थ) करो तब उनका उदाहरण देना। इस समय शांत हो जाओ।

महात्मा सुवल्गु तापसके वचनामृत सुनकर द्राविड़ राजा कुछ लज्जितसे हुए और क्षणभर पश्चात् ही नवीन धर्मरागसे मस्तक नवांकर बोले—'हे तापसपते! अज्ञान के कारण जैसे पामर प्राणी कांच और चिंतामणिको एक ही समान समझता है, वैसे ही मैंने उनका उदाहरण दिया है। हे तापसपते! अब मेरे लिए इस लोक और परलोक में धर्म एवं सुख प्रदान करने वाले किस कार्य को करनेकी आवश्यकता है? इस विषयकी उचित शिक्षा दीजिये।

महाराजा द्राविड़को धर्म तत्पर ईर्ष्याहीन तथा दयार्द्र हृदयी जानकर तापसपति आनन्दपूर्वक मधुर वचन

बोले—हे राजन्! पापकर्मके कारण रूप इस रणकार्यसे विराम पाकर, इस बन्धु तथा वैरीकी उत्पन्न वैर भावना को दूर करो। जबतक सतत पीछे लगी हुई मृत्युका समय न आवे, तबतक सर्व संपत्ति और अखंडित राज्य लगा हुआ ही है। फिर भी प्राण क्षणभंगुर हैं। शरीर आधि, व्याधि और उपाधिका घर है, और सायंकालीन बादलोंके समान यह चंचल राज्य और राज्यलक्ष्मी हैं। इसलिए आत्महितका विचार करो और यह राज्य-वैभव पुत्रको सौंपकर निवृत्ति दशामें प्रवर्तित होओ। यह असार और अनित्य देह है। इससे यदि शासन धर्म प्राप्त किया जा सके तो बुद्धिमान पुरुषके लिए क्या प्राप्त करना शेष रह जाता है?

द्राविड़ और वारिखिल्यका प्रेमभाव व दीक्षा

सुवल्गु तापसकी इस प्रकार वैराग्यपूर्ण सुधा समान धर्मवाणी सुनकर बुद्धिनिधान द्राविड़ महाराजा परम वैराग्यको प्राप्त हुए। उन्होंने तापसके चरणों में नमस्कार कर कहा—"हे भगवन्! आप ही मेरे गुरु हैं और आप ही मेरे देव हैं। इसी प्रकार इस संसार-सागर से मेरा उद्धार करनेवाले भी आप ही हैं। अतः हे दयासागर! प्रसन्न होकर मुझे दीक्षा दीजिये।" तब

महातपस्वी सुवल्गु मुनिने उनसे अपने लघुभ्राता वारिखिल्य और उसकी सेनासे क्षमा-याचनाकी प्रार्थना करनेके लिए कहा। तब तत्काल ही द्राविड़ महाराजा क्षमा-याचनाके लिए वारिखिल्यकी सेनाकी ओर चल पड़े, किन्तु इस प्रकार ज्येष्ठ बन्धुको अपनी ओर फुर्तीसे एकाको आते देखकर महाराजा वारिखिल्य तत्काल आसन परसे उठ खड़े हुए और प्रणाम-पूर्वक ज्येष्ठ बन्धुके चरणोंमें मार्जन कर विनय पुरस्सर बोले— "हे पूज्य! मेरे पूर्व भवके भाग्ययोगसे आप मेरे घर पर पधारे हैं। अतएव प्रसन्न होकर यह राज्य ग्रहण कीजिये।" तब लघुभ्राताकी भक्तिसे हर्षित होकर महाराजा द्राविड़ने अपना मंतव्य स्पष्टतासे समझानेके लिए तापसकी पवित्रवाणी सुनाते हुए कहा :—"श्री सुवल्गु तापसके पवित्र उपदेशसे जागृत होकर मैं जब अपना ही राज्य-वैभव त्याग रहा हूँ, तो फिर तुम्हारे राज्यको कैसे ग्रहण कर सकता हूँ! हाथी कानों से, घोड़े पूंछ से, खड्ग उनकी तेज धारसे और वारांगनाएँ चामरके द्वारा राज्य लक्ष्मीकी चंचलताको सदाके लिए बतलाते रहते हैं। हे भ्रात! मैंने स्वयं कोपायमान होकर तुमको क्रुद्ध किया है, उसके लिए क्षमा-याचना करनेको मैं तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हुआ हूँ।

राज्य वैभव छोड़ कर मैं व्रत साम्राज्य ग्रहण करूँगा।" फलतः ज्येष्ठ बन्धुके इन वैराग्ययुक्त धर्मवचनोंको सुन कर लघुभ्राता वारिखिल्य बोले—"जब आप इस राज्य वैभवको असार समझकर आत्महितका अवलम्बन करने के लिए दीक्षा ग्रहण कर रहे हैं; तब आपका यह अनुचर भी आपके साथ ही व्रत ग्रहण करनेको तैयार है। इस प्रकार तत्काल ही अपनी-अपनी राजगद्दियों पर अपने पुत्रोंको बैठाकर, योग्य मंत्रियों को राज्य-कार्य भार सम्हलवाते हुए दश कोटि मनुष्योंके साथ दोनों बन्धुओंने सुवल्गु तापसकी सेवामें पहुँच प्रार्थना-पूर्वक तापसी दीक्षा ग्रहण की और सिर पर जटा धारण करके फल भक्षण करते और गंगाकी मृत्तिकाको संपूर्ण देह पर लगाते हुए वे सभी परहित बुद्धि रख प्रतिदिन ध्यानमें तत्पर रहने लगे। वे मृगके पत्तोंके साथ बसते हुए जप मालाके द्वारा श्री युगादि प्रभुका नाम निरन्तर जपते और इस प्रकार परस्पर स्वेच्छापूर्वक धर्मकथा-चर्चा करके, दोषोंसे वर्जित सरलताको धारण करते हुए उन्होंने तापस-दशामें लाखों वर्ष व्यतीत कर दिये। इसी समय आकाश मार्ग से दो विद्याधर मुनियोंका उसी आश्रम में आगमन हुआ।

विद्याधर मुनियों द्वारा शत्रुंजय की महिमा

एक दिन नमिराजाके प्रति शिष्य दो विद्याधर मुनि तेजकी किरणोंसे आकाशको प्रकाशित करते हुए तापस वनमें उतरे। वे ऐसे प्रतीत हुए मानों धर्म और शांतिके रस ही हों। अतः उन दोनों मुनियोंको देखकर समस्त मुमुक्षु-तापसोंने उनके सम्मुख उपस्थित हो भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और स्वागत करते हुए पूछा कि—"आप कहांसे आ रहे हैं! और कहाँ जा रहे हैं? हम तो यही समझते हैं कि हमें पवित्र करने के लिए ही आप यहाँ पधारे हैं।" इस पर उन्हें धर्म लाभ रूप आशीर्वाद देकर विद्याधर मुनि बोले:—"हम श्री जिनेश्वर प्रभुकी सेवाके लिए शत्रुंजय-पुण्डरीक गिरि पर जानेके लिए निकले हैं।" तब तापसों ने शत्रुंजय-पुण्डरीक गिरिका वृत्तान्त पूछते हुए अपने उद्धारके लिए निवेदन किया, तब विद्याधर मुनियोंने इस प्रकार शत्रुंजय महिमा का वर्णन करते हुए कहा:—

"अनंत सुकृतोंका आधार श्री शत्रुञ्जय गिरिवर सौराष्ट्र देशमें शाश्वत रूपसे विजय पा रहा है। उस गिरिराज पर तीर्थके योगसे अर्हत और मुनि आदि अनंत जीव सिद्धिपद को प्राप्त हो चुके हैं, और भविष्यमें भी अनंत जीव सिद्धिपदको प्राप्त करेंगे। यह गिरिराज सिद्धि लक्ष्मीका अद्भुत क्रीडा शैल है।

अतएव वहाँ आये हुए प्राणियोंको वह (सिद्धिलक्ष्मी) क्षण भरमें ही सुखसे स्वस्थानमें लेजाती है। वहाँ मुक्तिपति ऐसे श्री शाश्वत युगादि प्रभु विराजमान हैं। अतएव वहाँ आये हुए पुरुष मुक्ति-सुखका स्वाद अनुभव करते हैं। उस गिरिरूप दुर्गमें निवास करने वाले पुरुषोंको अनन्त भव से साथ रहने वाले कुकर्मरूप क्रूर शत्रु भी पराजित नहीं कर सकते। जैसे कि सूर्य संग से अंधकार को और सज्जनोंके संगसे दुर्गुणका नाश होता है। उसी प्रकार तीर्थके संगसे क्षणभरमें ही हत्यादिक पापों का भी नाश हो जाता है।

शत्रुंजय की यात्राके लिए दशकोटि तापसोंका विद्याधर के साथ गमन और जिन दीक्षा।

पाठक! इस प्रकार श्री शत्रुञ्जय गिरिराजका माहात्म्य सुनकर सभी तापस भक्ति पूर्वक उन मुनिके साथ श्री शत्रुञ्जय गिरिराजके दर्शनके लिए चल दिये। भूमि पर विचरते हुए जीवोंकी रक्षा करते हुए वे मार्गमें चलते और योग्य आहार करते-करते दूर निकल गये। वहाँ एक सुन्दर सरोवर उन्हें दिखाई दिया। उस सरोवरके चारों ओर तट पर वृक्षोंकी सघन घटा छाई हुई थी। ग्रीष्मऋतुमें सूर्यकी प्रखर किरणोंसे त्रस्त

श्री आदिनाथ प्रभुका स्मरण कर।" इस प्रकार उपदेश देकर उन मुनिने उसे नवकार मंत्र सुनाया। उन पाँच नमस्कारोंके स्मरणसे पीड़ा मुक्त होकर वह समाधि-सहित मृत्युको प्राप्त हो सौधर्म देवलोकमें उत्तम देवत्व को प्राप्त हुआ। साथ ही उन दोनों मुनियोंके शुद्ध उपदेशसे सभी तापसोंने अपनी मिथ्यात्वरूपिणी क्रियाएँ छोड़कर जिनेशके व्रतादि ग्रहण किये। केश-लुंचन कर मिथ्यात्वकी आलोचना की, और व्रतधारी होकर दोनों मुनियोंके मुखसे इस भवसागरमें दुष्प्राप्य ऐसे समकितका स्वरूप भक्ति पूर्वक सुना। युगादिनाथ श्री आदीश्वर प्रभुके चरणोंमें तो वे पहले ही से भक्ति-भावना रखते थे। और व्रत लेनेसे विशेष भक्तिभावको धारण कर वे सभी तापस मुनि विद्याधरोंकी अनुमतिसे शत्रुंजय गिरिकी ओर चल पड़े। मार्गमें सांसारिक जीवोंको भी वे ज्ञानोपदेश देते जाते, और जीव-जन्तुओं की रक्षा करते हुए पृथ्वीको पवित्र करते हुए कई दिनों बाद श्री सिद्धाचलके दर्शन करनेके भाग्यशाली हो सके। श्री युगादि प्रभुरूप मुकुट-रत्नसे शत्रुंजय गिरि पृथ्वीरूप नारीके वनरूप केशों-द्वारा सुशोभित मस्तक की तरह दिखाई देता था। रत्न-किरणोंसे जगमगाते एक सौ आठ सुवर्ण-शिखरोंके कारण उस पर्वतकी शोभा अनेक

गुनी हो रही थी। मुक्तिपुरके उच्च सौधदर्श ... उस गिरिवर पर युगादिदेवके दर्शनार्थ वे उत्साह ... चढ़ने लगे। ऊपर खड़े रमणीय जिनालयके ... तीन प्रदक्षिणा की, जिनकी गौर कान्ति ... उज्ज्वल पुष्पकी तरह चमक रही थी। ... प्रभुको उन्होंने पंचांग नमस्कार किया। ... उल्लाससे प्रेरित होकर वे प्रभुके ... गाने लगे।

विद्याधर मुनिके कथनसे ... द्राविड़ और वारिखिल्यका ... कार्तिक सुदी पूर्णिमा के ...

मास क्षपण के अन्तमें दोनों ... साथके दशकोटि साधुओंको ... "हे साधुओं! पहले तुमने ... योगसे नरक प्राप्त करनेवाले ... हैं। अतएव तुम्हें इस क्षेत्रमें ही ... इस क्षेत्रके प्रभावसे तुम ... चाहिए। केवल ज्ञान पाकर मोक्षको प्राप्त ... करके उपदेश देकर वे दोनों देवर्षि ... इस प्रकार को प्रकाशित करते हुए ... दिया। तत्पश्चात द्राविड़ राजा और ... चले

मुनिवर उस तीर्थ एवं जिनेश्वरके ध्यानमें निमग्न होकर मासोपवास करते हुए उस स्थानमें ही बसे रहे, और यथाक्रम समस्त मोहनीय कर्मोंका क्षय करके अन्तमें निर्यामणा आचरण कर मन-वचनके योगसे समस्त प्राणियों से क्षमा याचनाकर, अष्ट कर्मोंका क्षयकर निर्मल केवल ज्ञानको प्राप्त हुए और अन्त मुहूर्तमें वे दशकोटि साधु मोक्षपदको प्राप्त हुए।

वह हंस जो कि सौधर्म देवलोकमें महाऋद्धिमान् देव हुआ था, उसने शत्रुंजय गिरिराज पर आकर भक्ति पूर्वक महासमृद्धिके द्वारा उनका निर्वाण महोत्सव किया। अन्य लोगोंको अपना पूर्व वृत्तान्त बतलाकर उस स्थानमें हंसावतारके नामसे पवित्र तीर्थकी स्थापना करके वह देवलोक की ओर चले दिये।

कार्तिक मासकी पूर्णिमाके दिन चन्द्रमाके कृत्तिका नक्षत्रमें आनेपर वे दशकोटि मुनि केवल ज्ञान प्राप्तकर सिद्धिपदको प्राप्त हुए थे। अतएव उसी समयसे कार्तिकी पूर्णिमाकी अपूर्व महिमा इस जगत्में प्रसिद्ध हो गई है। चातुर्मासकी अवधि पूर्णिमाके दिन ही समाप्त होती है। उस दिन देवतालोग मुनियोंका निर्वाण उत्सव मनाते हैं। अतः इस पूर्णिमाके दिन शत्रुंजय गिरिराजकी यात्रा, तपस्या और देवार्चन करनेसे अन्य स्थानों तथा

दूसरे अवसरोंकी अपेक्षा अधिक पुण्य होता है। कार्तिक मासमें मासक्षपण करनेसे जितने कर्म सैकड़ों सागरोंपम पर्यन्त नरकमें दुःख भोगने पर भी क्षय नहीं होते वे सब नष्ट हो जाते हैं। सिद्धाचलपर्वत पर कार्तिक पूर्णिमाके दिन मन, वचन और कायाके योगसे भावनापूर्वक केवल एक उपवास करनेसे प्राणी ब्रह्महत्या, स्त्री हत्या और गर्भ हत्या जैसे अघोर एवं नरकदायी पापोंसे भी मुक्त हो सकता है। श्री अर्हत प्रभुके ध्यानमें तत्पर होकर जो सिद्धि गिरिपर कार्तिकी पूर्णिमा करता है वह समस्त सुख भोगकर अन्तमें मोक्ष पाता है। कार्तिकी पूर्णिमा के दिन जो भाविक जिन-वचनानुरागी श्रावक श्री संघको लेकर सिद्धाचल क्षेत्रमें आता और आदरपूर्वक दान, तपस्या, पूजा, प्रभावना आदि जैन शासनको दीपित करनेवाले शुभ कर्म करता है, वह अनन्त सुख भोगकर मोक्ष पाता है।

उन निर्वाणपद पाये मुनीश्वरोंके पुण्योंने भी यात्राके लिए सिद्धाचलपर आकर जिनेश्वर प्रभुके प्रासादकी श्रेणि के समान सुन्दर रचना कराई और उनके द्वारा पुण्यराशि से वृद्धिगत होनेवाला यह सिद्धाचल अत्यन्त शोभायमान हो चला। इस प्रकार कोटि मुनियोंके कल्याणसे यह पवित्र तीर्थ तीनों लोकमें विशेष प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ।

आजीवन सदस्य बनिये

यदि आप हमारी "आदिनाथ हिन्दी जैन-साहित्य माला" में २५१) तीन सौ एकावन रुपये प्रदान कर आजीवन सदस्य बनेंगे तो माला की सभी पुस्तकें जिनका मूल्य लगभग १२०) एक सौ बीस रुपये हैं, वह सभी पुस्तकें आपको भेंट दी जायेंगी एवं भविष्य में प्रकाशित होनेवाली सभी पुस्तकें यानी प्रति वर्ष ढ़ाई सौ या तीन सौ पृष्ठकी पुस्तकें प्रकाशित होंगी, वह आपको जीवन पर्यन्त भेंट मिलती रहेंगी।

इसके अतिरिक्त यदि आपके पास हमारी पहलेकी सभी पुस्तकें हों और उनको नहीं लेना चाहें तो २५१) दो सौ एकावन रुपये प्रदान कर आजीवन सदस्य बन सकेंगे। नियमानुसार प्रकाशित होने वाली पुस्तकें आपको निरन्तर भेंट मिलती रहेंगी एवं छोटी-मोटी सभी पुस्तकों की सदस्य-श्रेणी की सूचि में आपका शुभ नाम भी छपता रहेगा। यदि आप बाहर गाँव रहते हों तो पुस्तक भेजने का डाक खर्च आपके जिम्मे रहेगा, यानी डाकखर्च की वी०पी० आपके नाम की जायगी।

९-११-१९६५
७, खेलात घोष लेन
कलकत्ता-६

आपका :—
नरेन्द्र सिंह जैन

ध्यानसे पढ़िये !!

पुण्य और कीर्ति उपार्जन कर अपना नाम अमर कीजिये

हमारे कार्यालयसे प्रतिवर्ष जैन-साहित्यकी उत्तमोत्तम छोटी-मोटी पुस्तकें प्रकाशित हुआ करती हैं। जिनमें सरल, शुद्ध हिन्दी भाषा रहती है। एवं उत्तमोत्तम भावपूर्ण मनोहर चित्र भी निवेशित किये जाते हैं। जिनके अवलोकन करनेसे पुस्तकोंका सारा विषय बायस्कोप की तरह आँखोंके सामने घूमने लगता है। अतएव किसी साहित्यानुरागी, धर्मप्रेमी जैन बन्धुको अपने माता-पिता, भाई बहिन प्रभृतिके स्मरणार्थ ज्ञान प्रचारके कार्य में कुछ भी रकम लगाकर पुण्य प्राप्त करना हो तो हमारी प्रकाशित होने वाली पुस्तकोंमें, जिसको वे पसन्द करें, उसमें उनका नाम तथा फोटो-चित्र देकर जैन समाजमें साधर्मिक बन्धुओंको उपहार भेंट देनेकी व्यवस्था कर उनकी मनोकामना पूर्ण कर दी जायगी। आशा है, हर एक जैन बन्धु हमारे निवेदनकी ओर लक्ष देकर इस व्यवस्थासे लाभ ग्रहण करते हुए हमें अनुग्रहीत करेंगे।

कार्तिक पूर्णिमा
सम्वत् २०२२
७, खेलात घोष लेन
कलकत्ता — ६

व्यवस्थापक द्वय :—
नरेन्द्र सिंह जैन
निर्मलसिंह जैन

हमारी उत्तमोत्तम सरल सुन्दर पुस्तकें

[illegible] रेशमी जिल्द	१०)	[illegible]	१.३८
[illegible] ,, ,,	६)	[illegible] कुमार	१.६५
[illegible] ,, ,,	८)	राजा [illegible]	१.२५
[illegible] ,, ,,	८)	[illegible]	१.२५
राजा [illegible] ,, ,,	७)	[illegible]	१.००
[illegible] ,, ,,	७)	[illegible]	१.००
राजा [illegible] ,, ,,	७)	[illegible]	१.००
[illegible] ,,	६)	[illegible]	.७५
[illegible] रेशमी जिल्द	५.५०)	[illegible]	.३५
[illegible] ,, ,,	५)	[illegible]	.५०
[illegible] कुमार ,, ,,	५)	[illegible]	.७०
राजा [illegible] ,, ,,	५)	[illegible]	.७५
[illegible] ,, ,,	५)	[illegible]	.७५
[illegible] कुमार ,, ,,	१)	[illegible]	.७५
[illegible]	१.५०	[illegible]	.५०
[illegible]	१.५०	[illegible] कुमार	.५५
[illegible]	१.५०	[illegible]	.५०
[illegible]	१.५०	[illegible] कुमार	.३५
[illegible]	१.५०	[illegible]	.७५
[illegible] कुमार	१.५०	[illegible]	.७५
[illegible]	१.२०	[illegible]	.३५

कार्तिक पूर्णिमा	-६३	नूपुर पण्डिता	·५०
सती द्रौपदी	·६३	होलिका पर्व	·५०
महाबल कुमार	·६३	कामदेव श्रावक	·५०
अरणिक मुनि	·५०	लक्कड़हारा	·५०
आनन्द श्रावक	·५०	रत्नशिखर	·५०
नमस्कार मन्त्र माहात्म्य	·५०	महासती मृगावती	·५०
कूर्मापुत्र	·५०	सुरादेव श्रावक	·३८
इलाची कुमार	·५०	नन्दिनीप्रिय श्रावक	·३८
महाशतक श्रावक	·५०	अतिमुक्त कुमार	·३८
माता देवानन्दा	·५०	ज्ञान पंचमी माहात्म्य	·३८
ब्राह्मी-सुन्दरी	·५०	कुण्डकोलिक श्रावक	·३५

प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें

तरंगवती तरंगलोला—	प्रेसमें	मेघकुमार चरित्र—	प्रेसमें
भरतेश्वर बाहुबली—	प्रेसमें	अमर कुमार (नाटक)—	प्रेसमें
अनाथी मुनि—	प्रेसमें	देवद्रव्य —	प्रेसमें
हरिकेशी बल—	प्रेसमें	समरादित्य चरित्र—	प्रेसमें
मुनि सुव्रतस्वामी—	प्रेसमें	आर्द्रकुमार—	प्रेसमें
तिलक मंजरी—	प्रेसमें	आचार्य हेमचन्द्र—	प्रेसमें
...पुरुष चरित्र—	प्रेसमें	बालमुनि मनक—	प्रेसमें
...मक राज चरित्र—	प्रेसमें	विमलशाह	प्रेसमें
...लक कुमार—	प्रेसमें	चिलाती पुत्र—	प्रेसमें
मिथिलापति नमीराज—	प्रेसमें	आचार्य स्कन्दक—	प्रेसमें
कवि धनपाल	प्रेसमें	त्रिशला माता	प्रेसमें

पता—पण्डित काशीनाथ जैन,
पो० बम्बोरा (उदयपुर-राजस्थान